[2025] 3 एस.सी.आर 450: 2025 आईएनएससी 325

श्रीमती लावण्या सी. एवं अन्य

बनाम

विट्टल गुरुदास पाई, मृत, विधिक प्रतिनिधि द्वारा एवं अन्य

(सिविल अपील संख्या 13999/2024)

05 मार्च 2025

[पंकज मित्तल और संजय करोल, जे.जे.]

विचारणीय मुद्दा

क्या उच्च न्यायालय द्वारा विचारण न्यायालय के उस आदेश को रद्द करना सही था जिसमें अपीलकर्ताओं को अदालत को दिए गए अपने आश्वासन की जानबूझकर अवहेलना का दोषी न ठहराया गया था।

शीर्ष टिप्पणियाँ

न्यायालय की अवमानना - जब - अपीलकर्ताओं ने मुकदमे के विषय वस्तु संपत्ति को परित्याग न करने का आश्वासन विचारण न्यायालय में दिया था। प्रतिवादियों ने इसके उल्लंघन का आरोप लगाते हुए आवेदन दायर किया। विचारण न्यायालय ने निर्णय दिया कि अपीलकर्ता द्वारा दिया गया आश्वासन जानबूझकर न मानने का कोई दोष नहीं है। उच्च न्यायालय द्वारा यह आदेश रद्द कर दिया गया।

औचित्य:

अभिनिर्धारित: अपीलकर्ताओं का तर्क कि मुकदमे की विषय वस्तु संपत्ति को परित्याग न करने का आश्वासन उनके वकील द्वारा आवश्यक अधिकार के बिना दिया गया था, स्वीकार नहीं किया गया - विवादित आश्वासन जुलाई 2007 में दिया गया और अगस्त 2007 में पुनः दोहराया गया। विचारण न्यायालय ने इस आश्वासन को नवंबर 2007 में न्यायालय के आदेश में परिवर्तित किया, जिसे नियमित अंतराल पर बढ़ाया गया। आदेश/आश्वासन के उल्लंघन के लिए आदेश XXXIX नियम 2A के अंतर्गत आवेदन वर्ष 2011 में किया गया, अर्थात् लगभग चार वर्ष और छह महीने बाद। यदि आश्वासन आवश्यक अधिकार के बिना दिया गया होता, तो अपीलकर्ताओं के पास उस आदेश को रद्द कराने का पूरा अधिकार था, तथापि ऐसा कोई कदम नहीं उठाया गया। संपत्ति का परित्याग न्यायालय के स्पष्ट आदेशों के बावजूद किया गया और इस प्रकार, उसके उल्लंघन में हुआ। उच्च न्यायालय ने सही ढंग से अपीलकर्ताओं को न्यायालय के अवमानना के लिए दंडित किया। हालाँकि, आदेश में संशोधन किया गया जैसा कि निर्देशित किया गया। संदर्भ: दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश XXXIX नियम 2A। [पैरा 6, 11, 12, 14]

कानूनी पेशा - अधिवक्ता और मुवक्किल के बीच संबंध - प्रकृति:

अभिनिर्धारित: एक अधिवक्ता और मुवक्किल के बीच संबंध प्रकृति में प्रत्ययी होता है और पूर्व को बाद की अभिकरण के संदर्भ में डाला जाता है - अधिवक्ता को मुवक्किल के निर्णय लेने के अधिकार का सम्मान करना चाहिए - न्यायालय

को दिया गया कोई भी उपक्रम मुवक्किल से अपेक्षित अधिकार के बिना नहीं हो सकता है। [पैरा 9]

उद्घृत निर्णयजन्य विधि

समी खान बनाम बिंदू खान [1998] सप्लीमेंट 1 एससीआर 244: (1998) 7 एससीसी 59; वांडर लिमिटेड और अन्य बनाम एंटॉक्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड (1990) सप्प 1 एससीसी 727; रमाकांत अंबालाल चोकसी बनाम हरीश अंबालाल चोकसी, 2024 एससीसी ऑनलाइन 3538; दलपत कुमार बनाम प्रह्लाद सिंह [1991] सप्लीमेंट 3 एससीआर 472: (1992) 1 एससीसी 719; कंवर सिंह सैनी बनाम दिल्ली उच्च न्यायालय [2011] 15 एससीआर 972: (2012) 4 एससीसी 307; कोक्कंडा बी. पूंडचा बनाम केडी गणपति [2011] 4 एससीआर 417: (2011) 12 एससीसी 600;उत्तर प्रदेश राज्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य विधि अधिकारियों की असेंस। [1994] 1 एससीआर 348: (1994) 2 एससीसी 204; हिमालयन कॉप ग्रुप हाउसिंग सोसाइटी बनाम बलवान सिंह [2015] 4 एससीआर 616: (2015) 7 एससीसी 373; बार ऑफ इंडियन लॉयर्स बनाम नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ कम्युनिकेबल डिजीज (2024) 8 एससीसी 430; सुप्रीम न्यायालय बार असैन बनाम भारत संघ [1998] 2 एससीआर 795: (1998) 4 एससीसी 409 - संदर्भित किया गया।

अधिनियमों की सूची

न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1971; दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908

प्रमुख शब्दों की सूची

न्यायालय की अवमानना; न्यायालय के आदेश का स्पष्ट उल्लंघन; उपक्रम की अवज्ञा; या दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 का XXXIX R. 2A; नागरिक अवमानना; अधिवक्ता और मुवक्किल के बीच प्रत्ययी संबंध; मुवक्किल से अपेक्षित अधिकार के बिना उपक्रम; विषय वस्तु संपत्ति का अलगाव; अस्थायी निषेधाज्ञा के आदेश की अवज्ञा।

मामले की उत्पत्ति

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: दीवानी अपील संख्या 13999/2024
बेंगलुरु में कर्नाटक उच्च न्यायालय के 23.02.2021 के निर्णय और आदेश से 2013 के एमएफए संख्या 7055 में -

अधिवक्तागण

अपीलकर्ताओं कि ओर से अधिवक्तागण:
राधाकृष्ण एस हेगड़े, राजीव सिंह।
प्रतिवादियों के लिए एडवोकेट:
विक्रम हेगड़े, अभिनव हंसरामन।

सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

निर्णय

संजय करोल जे.

1. यह अपील बेंगलुरु में कर्नाटक उच्च न्यायालय द्वारा विविध प्रथम अपील संख्या 7055/2013 (सीपीसी) में पारित 23 फरवरी 2021/16 मार्च, 2021 के निर्णय और आदेश से उत्पन्न होती है, जिसके तहत उच्च न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी, यहां अपीलकर्ता (विचारण न्यायालय में प्रतिवादी) विचारण न्यायालय के सामने दिए गए अपने वादे को न मानने का दोषी पाया गया,

जिसमें उन्होंने मुकदमे की विषय-वस्तु संपत्ति को अलग न करने का वादा किया था।

विचारण न्यायालय में मूल प्रतिवादियों ने अपने वकील के माध्यम से एक आश्वासन दिया था, जिसका कथित तौर पर उल्लंघन किया गया। इससे व्यथित होकर वादी ने मुकदमा दायर किया, जिसे खारिज कर दिया गया, और उन्होंने उच्च न्यायालय में अपील की, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें अनुकूल आदेश प्राप्त हुआ। अब मूल प्रतिवादी, जिन्हें न्यायालय द्वारा अवमानना में पाया गया, वर्तमान अपीलकर्ताओं के रूप में इस अपील में उपस्थित हैं।

2. अपील की ओर ले जाने वाले तथ्यों का एक संक्षिप्त सारांश है:

2.1. यहां प्रतिवादी 2007 के मूल वाद संख्या 4191 में मूल वादी थे, जिसमें इस आशय की घोषणा की मांग की गई थी कि 30 अप्रैल 2004 के पक्षों के बीच समझौता, अर्थात, 'संयुक्त विकास समझौता'1 को "निरस्त, रद्द और समाप्त" किया जाएगा। जेडीए को हस्तांतरण योग्य आधार पर 24 महीने की अवधि के भीतर आवासीय अपार्टमेंट के निर्माण के संबंध में प्रवेश किया गया था।

2.2. उक्त निर्माण 31 अक्तूबर, 2006 तक पूरा किया जाना था। हालांकि, ऐसा नहीं किया जा सका। कानूनी नोटिस की सूचना जेडीए को रद्द करने का आदेश 23 मार्च, 2007 को जारी किया गया था और अंतत: मूल वाद का विषय दायर किया गया।

2.3. विद्वान विचारण न्यायालय ने अंततः 2 जनवरी 2017 के फैसले और आदेश के माध्यम से निष्कर्ष निकाला कि वादी यह साबित नहीं कर

सके कि किया गया निर्माण जेडीए का उल्लंघन था और इसके बजाय, प्रतिवादियों ने साबित कर दिया कि उनके द्वारा किया गया निर्माण उसके अनुसार था। यह माना गया कि वादी घोषणा और स्थायी निषेधाज्ञा के हकदार नहीं थे, जैसा कि प्रार्थना की गई थी।

2.4. उपरोक्त कार्यवाही के लंबित होने पर, अभिलेख से पता चलता है कि प्रतिवादियों के वकील ने दो मौकों पर, यानी 11 जुलाई 2007 और 13 अगस्त 2007 को कहा कि वे किसी तीसरे व्यक्ति को विषय संपत्ति को अलग नहीं करेंगे। हालांकि, कथित तौर पर, इस तरह के उपक्रम का पालन नहीं किया गया था, जिसके कारण अंतरिम आवेदन संख्या 3 दाखिल किया गया था, जिसे दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 2 के आदेश XXXIX नियम 2A के तहत 2011 के दीवानी विविध आवेदन संख्या 38 के रूप में पंजीकृत किया गया था।

2.5. संबंधित न्यायालय ने निम्नलिखित **मुद्दा** तैयार किए:

"1) क्या याचिकाकर्ताओं ने प्रतिवादी द्वारा दिए गए वचन और दिनांक 17.11.2007 के निषेधाज्ञा के आदेश के अनुसरण में प्रतिवादियों द्वारा सभी उचित संदेहों से परे उल्लंघन या जानबूझकर अवज्ञा का मामला बनाया है?

2) कौन सा आदेश?"

2.6. न्यायालय ने उस क्षेत्राधिकार पर विचार किया जिसे आंदोलन किया गया है, यह देखते हुए कि उक्त शक्ति प्रकृति में दंडात्मक है और न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1971 के तहत दीवानी अवमानना के लिए सजा देने के समान है। यह निम्नानुसार निष्कर्ष निकाला गया:

"38. यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि याचिकाकर्ताओं के वकील ने सूट संपत्ति की 10 तस्वीरें पेश की हैं, जो दर्शाती हैं कि सूट की संपत्ति अभी भी खाली है और नींव पड़ी हुई है। लेकिन, यहां इस मामले में, याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया है कि फ्लैट प्रतिवादियों द्वारा **बेचे गए थे न्यायालय के आदेश के बावजूद। इसके अलावा,, वाद संपत्ति का विवरण अधूरा और अस्पष्ट है। इसलिए, याचिकाकर्ताओं का कथन/तर्क विश्वसनीय नहीं है।**

39. उपर्युक्त कारणों एवं की गई टिप्पणियों के आलोक में मैं सुरक्षित रूप से यह निष्कर्ष निकालता/निकालती हूँ कि याचिकाकर्ता अपने मामले को संदेह से परे सिद्ध करने में असफल रहे हैं कि प्रतिवादियों ने इस न्यायालय के निषेधाज्ञा (injunction) आदेश का जानबूझकर एवं स्वेच्छापूर्वक उल्लंघन किया है। अभिलेख पर ऐसा कोई पर्याप्त एवं संतोषजनक सामग्री उपलब्ध नहीं है, जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि प्रतिवादियों ने इस न्यायालय के आदेश की जानबूझकर अवज्ञा की है अथवा उसका उल्लंघन किया है। अतः प्रतिवादी संदेह का लाभ पाने के अधिकारी हैं। इसलिए, उपर्युक्त **मुद्दा** क्रमांक 1 का उत्तर नकारात्मक में दिया जाता है।

40. मुद्दा क्रमांक 2: उपर्युक्त कारणों तथा मेरे निष्कर्षों एवं विचार-विमर्श के परिप्रेक्ष्य में, मैं निम्नलिखित आदेश पारित करता/करती हूँ:

<u>आदेश</u>

"परिणामस्वरूप, इसलिए यह दीवानी विविध याचिका (IA No. 3) जो याचिकाकर्ताओं द्वारा आदेश XXXIX नियम 2A और धारा 151, नागरिक प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत प्रतिवादियों के विरुद्ध दायर की

गई थी, अस्वीकार की जानी उचित है। तदनुसार, यह याचिका खारिज की जाती है।

पक्षकार अपने-अपने खर्च स्वयं वहन करेंगे।"

2.7. इस आदेश से व्यथित होकर, उच्च न्यायालय से विविध के माध्यम से संपर्क किया गया। सीपीसी के 104 (i) के साथ पठित आदेश XLIII नियम 1 (आर) के तहत 2013 की पहली अपील संख्या 7055 (सीपीसी)। विचार किया जाने वाला प्रश्न यह था कि क्या निचली अदालत का आदेश कानून में टिकाऊ है।

<u>आक्षेपित निर्णय</u>

3. आदेश XXXIX नियम 2A के तहत आवेदन की रखरखाव का प्रश्न उठाया गया था। **सामी खान *बनाम बिंदु खान,3*** के संदर्भ में यह माना गया कि भले ही निषेधाज्ञा आदेश को बाद में रद्द कर दिया गया हो, लेकिन उसकी अवज्ञा को मिटाया नहीं जाता है। किसी वाद को बाद में खारिज करने से निषेधाज्ञा के उल्लंघन के दायित्व के पक्ष को दोषमुक्त नहीं किया जाता है आदेश। इसके अलावा, यह देखा गया कि विचारण न्यायालय द्वारा मूल वाद को खारिज करने के खिलाफ एक अपील भी उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित थी, जिसमें R.F.A.NO.592/2017 शामिल था।

3.1. विवाद का सार यह है कि 11 जुलाई 2007 को, अपीलकर्ताओं के वकील ने यहां ज्ञापन दायर किया:

"अधोहस्ताक्षरी वकील ने वचन दिया है कि प्रतिवादियों ने सूट अनुसूची संपत्ति को किसी तीसरे व्यक्ति को **हस्तांतरित** नहीं किया है"

3.2. इसके बाद, **13 अगस्त और 17 नवंबर, 2007** की दो तारीखों को विचारण न्यायालय की कार्यवाही को विचारण न्यायालय द्वारा पैरा 26 से 28 में नोट किया गया है, जो इस प्रकार है:

"26. फिर मामले को **13-08-2007** तक के लिए स्थगित कर दिया गया। **13.08.2007** को, प्रतिवादियों के वकील ने एक और ज्ञापन दायर किया जो इस प्रकार है:

"अधोहस्ताक्षरी वकील ने वचन दिया है कि उन्होंने उपरोक्त मामले में सूट अनुसूची संपत्ति को अलग नहीं किया है।

27. फिर विचारण न्यायालयने मामले को **17.11.2007** को सूचीबद्ध करने का आदेश दिया। **17.11.2007** को, प्रतिवादियों के वकील न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने में विफल रहे। वादी के वकील ने प्रतिवादियों के वकील द्वारा दिए गए वचन के बारे में अदालत को प्रस्तुत किया। ऐसी परिस्थितियों में, विचारण न्यायालयने निम्नलिखित आदेश पारित किए:

"मुकदमे के पक्षकारों ने पुकारा गया। अनुपस्थित। वादी के विद्वान वकील उपस्थित हैं। प्रतिवादी के विद्वान वकील अनुपस्थित हैं। **अंतिम तिथि पर प्रतिवादियों के विद्वान वकील ने यह निर्णय लिया था कि प्रतिवादी वाद की संपत्ति का हस्तांतरण नहीं करेंगे।** आज न तो प्रतिवादी और न ही प्रतिवादियों के विद्वान वकील मौजूद हैं। आई.ए. I और II को नहीं सुना जा सकता क्योंकि प्रतिवादी संख्या 1 से 3 के विद्वान वकील अनुपस्थित हैं। **इसलिए, एतद्द्वारा यह आदेश**

दिया जाता है कि प्रतिवादी 1 से 3 अगली तारीख तक वाद संपत्ति को हस्तांतरित नहीं करेंगे। आईए, I और II की सुनवाई के लिए और सीपीसी की धारा 89 के तहत पार्टियों को बुलाएं। 08-12-2007 को कॉल करें।

28. उस आदेश को समय-समय पर बढ़ाया गया था। 17.11.2007 के बाद, प्रतिवादियों ने Exs.P3 से P5, Ex.P7 से P13 के तहत बिक्री विलेख निष्पादित किए, जिनकी तारीखें इस प्रकार हैं:

Ex.P3-19.11.2007 Ex.P4-03.12.2008
Ex.P5-01.07.2008 Ex.P7-15.06.2009
Ex.P8-06.08.2008 Ex.P9-13.12.2011
Ex.P10-19.11.2007Ex.P11-01.07.2008
Ex.P12-03.12.2008 Ex.P13-15.06.2009"

3.3. न्यायालय ने विभिन्न न्यायिक घोषणाओं का हवाला देते हुए कहा कि इस तर्क में कोई दम नहीं था कि निषेधाज्ञा आदेश अमान्य है। निचली अदालत के आदेश को रद्द कर दिया गया था, और यहां अपीलकर्ताओं को विचारण न्यायालय के समक्ष किए गए अपने वचन की अवज्ञा का दोषी ठहराया गया था।

3.4. दिनांक 16 मार्च 2021 के आदेश के तहत अपीलकर्ताओं को न्यायालय की अवमानना का दोषी ठहराया गया था। अवमाननाकर्ता संख्या 3, अर्थात्, आर.बी चालसानी, जो यहां दूसरा अपीलकर्ता है, को तीन महीने की अवधि के लिए सिविल हिरासत में रखने और उसकी संपत्ति, वाद की विषय वस्तु, को एक वर्ष की अवधि के लिए कुर्क करने का निर्देश

दिया गया था। अवमाननाकर्ता संख्या 2, अर्थात्, श्रीमती लावण्या सी., यहां पहली अपीलकर्ता, ने यह निर्देश दिया था कि विषय वस्तु संपत्ति को एक वर्ष की अवधि के लिए कुर्क किया जाए। यह भी निर्देश दिया गया था कि दोनों अवमाननाकर्ता प्रतिवादियों को हुई कठिनाई के मुआवजे के रूप में चार सप्ताह के भीतर 10 लाख रुपये की राशि का भुगतान करेंगे। कुर्की का निर्देश देने वाले आदेश का हिस्सा 60 दिनों की अवधि के लिए रोक दिया गया था।

<u>"विचारार्थ"</u>

4. यह उच्च न्यायालय का आदेश है जिसे इस अपील में चुनौती देने की मांग की गई है। विशेष अनुमति याचिका के माध्यम से, अन्य बातों के साथ-साथ यह आग्रह किया गया है

a) आदेश XXXIX नियम 1 और 2 के तहत आवेदन में की गई प्रार्थनाओं में, पक्षों को तीसरे पक्ष के अधिकार बनाने से रोकने के लिए कोई विशिष्ट प्रार्थना नहीं की गई है। विचारण न्यायालय ने कहा है कि संपत्ति का विवरण अस्पष्ट, अधूरा है और कोई संतोषजनक सामग्री अभिलेख पर नहीं लाई गई है। अपीलकर्ताओं की ओर से जानबूझकर अवज्ञा दिखाएं, इसलिए, वे संदेह के लाभ के हकदार हैं।

b) मूल वाद दायर करने से पहले ही अपार्टमेंट के निर्माण और उसके एक हिस्से को बेचने के संबंध में प्रतिवादियों की ओर से तथ्यों को जानबूझकर छिपाया गया है।

c) न्यायालय के समक्ष बिना शर्त माफी मांगी गई है और यहां अपीलकर्ताओं का सक्षम न्यायालय द्वारा पारित किसी भी आदेश का अनादर करने का कोई इरादा या इच्छा नहीं है।

d) उपस्थित तथ्यों और परिस्थितियों में लगाई गई सजा अनुचित है, यह देखते हुए कि दूसरा अपीलकर्ता वरिष्ठ नागरिक है और विभिन्न बीमारियों से पीड़ित है।

5. हमने पक्षों के विद्वान वकीलों को सुना है और अभिलेख का अवलोकन किया है। विचार किया जाने वाला प्रश्न यह है कि क्या उच्च न्यायालय ने नीचे दिए गए न्यायालय के आदेश को रद्द करने में सही था, जिसमें अपीलकर्ताओं को न्यायालय को दिए गए अपने वचन की जानबूझकर अवज्ञा का दोषी नहीं ठहराया गया था।

6. कुछ तिथियों को तत्काल याद करने की आवश्यकता होती है। विवाद का उपक्रम विषय 11 जुलाई 2007 को वकील द्वारा दिया गया था और 13 अगस्त 2007 को दोहराया गया था। विचारण न्यायालय ने 17 नवम्बर, 2007 को न्यायालय के एक आदेश में ऐसा वचन दिया। इसे नियमित अंतराल पर बढ़ाया गया था। आदेश XXXIX नियम 2A के तहत न्यायालय के उपक्रम/आदेश के उल्लंघन के लिए आवेदन 2011 में किया गया था। 2 अगस्त 2013 को आवेदन को खारिज करने का आदेश दिया गया था। इसके तुरंत बाद, उच्च न्यायालय के समक्ष एक अपील दायर की गई। इस अपील के लंबित रहने में, मूल वाद 2 जनवरी 2017 को तय किया गया। मूल वाद

की इस तरह की बर्खास्तगी के खिलाफ एक अपील उच्च न्यायालय के समक्ष उस तारीख को लंबित थी जब आक्षेपित निर्णय पारित किया गया था।

7. हालांकि प्राथमिक चिंता का विषय है, इस अपील में अपीलकर्ताओं द्वारा भुगतान किए जाने वाले कारावास और मुआवजे की सजा है, आदेश XXXIX नियम 1, नियम 2 और नियम 2A की रूपरेखा पर ध्यान देना उचित होगा।

7.1 तीन न्यायाधीशों की पीठ ने ***वांडर लिमिटेड और अन्य बनाम एंटॉक्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड*** में यह कहा -

"9. .....

"... वादी को उसके अधिकारों के उल्लंघन से होनेवाली उस क्षति से संरक्षण प्रदान करना है, जिसकी पूर्ति वाद में हर्जाना (damages) देकर पर्याप्त रूप से नहीं की जा सकती, यदि मुकदमे (ट्रायल) में अनिश्चितता का समाधान उसके पक्ष में हो जाए। ऐसे संरक्षण की आवश्यकता का मूल्यांकन प्रतिवादी की उस समान आवश्यकता के साथ तुलनात्मक रूप से किया जाना चाहिए, जिसके अंतर्गत उसे अपनी विधिक अधिकारों के प्रयोग से रोके जाने के परिणामस्वरूप होने वाली क्षति से संरक्षण चाहिए, जिसकी भी पर्याप्त भरपाई संभव न हो। न्यायालय को दोनों आवश्यकताओं का तुलनात्मक आकलन कर यह निर्धारित करना होता है कि 'सुविधा का संतुलन' किस पक्ष में है।"

x x x x

14. डिवीजन बेंच के समक्ष अपील एकल न्यायाधीश द्वारा विवेक के प्रयोग के खिलाफ थी। ऐसी अपीलों में, अपीलीय न्यायालय प्रथम दृष्टया न्यायालय के विवेक के प्रयोग में हस्तक्षेप नहीं करेगा और अपने स्वयं के विवेक को प्रतिस्थापित करेगा, सिवाय इसके कि जहां विवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से, या असंगंत रूप से या विकृत रूप से किया गया है या जहां न्यायालय ने अंतरिम निषेधाज्ञाओं के अनुदान या इनकार को विनियमित करने वाले कानून के स्थापित सिद्धांतों की अनदेखी की थी। विवेक के प्रयोग के खिलाफ अपील को सिद्धांत रूप में अपील कहा जाता है। अपीलीय अदालत सामग्री का पुनर्मूल्यांकन नहीं करेगी और नीचे की अदालत द्वारा पहुंची गई एक निष्कर्ष से अलग निष्कर्ष पर पहुंचने की कोशिश करेगी यदि उस अदालत द्वारा सामग्री पर पहुंचा गया उचित रूप से संभव था। अपीलीय न्यायालय को आम तौर पर अपील के तहत विवेक के प्रयोग में हस्तक्षेप करने में केवल इस आधार पर हस्तक्षेप करना उचित नहीं होगा कि यदि उसने परीक्षण के चरण में मामले पर विचार किया होता तो यह एक विपरीत निष्कर्ष पर पहुंचता। यदि विचारण न्यायालय द्वारा विवेक का प्रयोग यथोचित और न्यायिक तरीके से किया गया है, तो यह तथ्य कि अपीलीय न्यायालय ने एक अलग दृष्टिकोण अपनाया होगा, विचारण न्यायालय के विवेक के प्रयोग में हस्तक्षेप को उचित नहीं ठहरा सकता है। इन सिद्धांतों का उल्लेख करने के बाद ***गजेंद्रगडकर, जे. इन प्रिंटर्स (मैसूर) प्राइवेट लिमिटेड वी . पोथन जोसेफ[(1960) 3 एससीआर 713: एआईआर 1960 एससी 1156]*** : (एससीआर 721)

> "... ये सिद्धांत भली-भांति स्थापित हैं, किंतु जैसा कि विस्काउंट साइमन ने ***चार्ल्स ओसेंटन एंड कंपनी बनाम जहानटन (1942 ए.सी. 130)*** में अवलोकित किया है– '... किसी अपीलीय न्यायालय द्वारा अधीनस्थ न्यायाधीश के विवेकाधिकार के प्रयोग में पारित आदेश को पलटने के संबंध में विधि सुव्यवस्थित एवं स्थापित है, और यदि कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो वह केवल किसी व्यक्तिगत मामले में इन सुव्यवस्थित सिद्धांतों के अनुप्रयोग के कारण होती है।'"
>
> अपीलीय निर्णय इस सिद्धांत को स्थगित नहीं करता है।
>
> (विशेष रूप से रेखांकित)

7.2 ***रमाकांत अंबालाल चोकसी बनाम हरीश अंबालाल चोकसी***[5] , में इस न्यायालय के एक हालिया फैसले में ***दलपत कुमार बनाम प्रहलाद सिंह***[6] का जिक्र करते हुए अस्थायी निषेधाज्ञा प्रदान करने वाले सिद्धांतों को दोहराया गया है।

7.3 अस्थायी निषेधाज्ञा के आदेश की अवज्ञा के पहलू पर ***कंवर सिंह सैनी बनाम दिल्ली उच्च न्यायालय***[7] में निम्नलिखित शब्दों में विस्तार से चर्चा की गई है:

"**17.** आदेश 39 नियम 2-A सीपीसी के तहत आवेदन केवल वहीं होता है जहां दी गई निषेधाज्ञा या आदेश का उल्लंघन या शिकायत की गई थी, जो आदेश 39 नियम 1 और 2 सीपीसी के तहत अदालत द्वारा प्रदान की गई थी, जो स्वाभाविक रूप से मुकदमे के लंबित रहने के

दौरान लागू होती है। हालांकि, एक बार जब कोई मुकदमा तय हो जाता है, तो अंतरिम आदेश, यदि कोई हो, अंतिम आदेश में विलीन हो जाता है। कोई भी वादी कानून की अदालत में केवल मामले के लंबित होने से कोई लाभ प्राप्त नहीं कर सकता है, क्योंकि अंतरिम आदेश हमेशा मामले में पारित किए जाने वाले अंतिम आदेश में विलीन हो जाता है और यदि मामला अंततः खारिज कर दिया जाता है, तो अंतरिम आदेश स्वचालित रूप से रद्द हो जाता है। (देखें ए.आर. सरकार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) [1993 सप्प (2) एससीसी 734: 1993 एससीसी (एलएंडएस) 896: (1993) 24 एटीसी 832], शिव शंकर वी। उत्तर प्रदेश एसआरटीसी [1995 सप्प (2) एससीसी 726: 1995 एससीसी (एल एंड एस) 1018: (1995) 30 एटीसी 317], आर्य नगर इंटर कॉलेज वी। श्री कुमार तिवारी [(1997) 4 एससीसी 388: 1997 एससीसी (एल एंड एस) 967 : एआईआर 1997 एससी 3071], जीटीसी इंडस्ट्रीज लिमिटेड बहुत। भारत संघ[(1998) 3 एससीसी 376: एआईआर 1998 एससी 1566] और जयपुर नगर निगम। बहुत। सीएल मिश्रा [(2005) 8 एससीसी 423].)

18. यदि दीवानी मुकदमे में पारित डिक्री की शर्तों का पालन न करने की शिकायत होती है, तो पीड़ित व्यक्ति के लिए उपलब्ध उपाय आदेश 21 नियम 32 सीपीसी के तहत निष्पादन न्यायालय का दरवाजा खटखटाना है, जो विस्तृत कार्यवाही का प्रावधान करता है जिसमें पक्ष अपने साक्ष्य पेश कर सकते हैं और अवमानना की कार्यवाही के विपरीत गवाहों की जांच और जिरह कर सकते हैं जो प्रकृति में सारांश हैं। आदेश 39 नियम 2-A सीपीसी के तहत आवेदन एक बार वाद के डिक्री के

बाद बनाए रखने योग्य नहीं है। कानून आदेश 21 नियम 32 सीपीसी के तहत उपलब्ध उपायों को छोड़ने और अवमानना की कार्यवाही का सहारा लेने की अनुमति नहीं देता है, इस कारण से कि अदालत को 1971 के अधिनियम के तहत अपने विवेक का प्रयोग करना पड़ता है जब संबंधित व्यक्ति के लिए एक प्रभावी और वैकल्पिक उपाय उपलब्ध नहीं होता है। इस प्रकार, जब मामला एक डिक्री या डिक्री के उल्लंघन से संबंधित होता है, तो पार्टियों के बीच अधिकारों का प्रतीक होता है, तो अवमानना क्षेत्राधिकार को लागू करना और प्रयोग करना समीचीन नहीं है, संक्षेप में, डिक्री को निष्पादित करने के तरीके के रूप में या केवल इसलिए कि अन्य उपायों में समय लग सकता है या चरित्र में अधिक परिचालित हैं। इस प्रकार, स्थायी निषेधाज्ञा के उल्लंघन को कार्यवाही को निष्पादित करने में सही ठहराया जा सकता है, न कि अवमानना की कार्यवाही में। इस तर्क में पूरी तरह से भ्रम है कि आदेश 39 नियम 2-A सीपीसी के प्रावधानों में डिक्री पारित होने के समय दिए गए स्थायी निषेधाज्ञा के उल्लंघन या उल्लंघन का मामला भी शामिल होगा।

7.4 **सामी खान** (सुप्रा) में, यह देखा गया था कि:

"**12.** लेकिन आदेश 39 के नियम 2-A के तहत स्थिति अलग है। यहां तक कि अगर निषेधाज्ञा आदेश को बाद में रद्द कर दिया गया था, तो अवज्ञा मिटाई नहीं जाती है। यह अलग बात हो सकती है कि इस तरह की अवज्ञा की कठोरता यदि आदेश को बाद में रद्द कर दिया जाता है तो इसे कम किया जा सकता है। निषेधाज्ञा के आदेश की अवज्ञा के मामले में संपत्ति को किस उद्देश्य के लिए कुर्क किया जाना है? उप-

नियम (2) में प्रावधान है कि यदि अवज्ञा या उल्लंघन कुर्की की तारीख से एक वर्ष से अधिक समय तक जारी रहता है, तो अदालत को कुर्की के तहत संपत्ति बेचने और प्रभावित पक्ष को ऐसी बिक्री आय से मुआवजा देने का अधिकार है।

8. इस न्यायालय के समक्ष आवेदन की विचारणीयता के बारे में कोई प्रश्न नहीं है। यह भी सच है कि जिस चुनौती के खिलाफ आक्षेपित निर्णय पारित किया गया था, वह आदेश मूल वाद के लंबित होने में किया गया था और इसलिए, यह उस बार से भी बच गया है। इसलिए, इस तरह के अधिकार क्षेत्र के प्रयोग पर कोई त्रुटि नहीं पाई जा सकती है।

9. अगला **मुद्दा** जिस पर ध्यान देने की ज़रूरत है, वह है एक अधिवक्ता और उसके मुवक्किल के बीच का रिश्ता। अपील करने वालों ने अपने अधिवक्ता पर कुछ इल्ज़ाम लगाए हैं कि उन्होंने, कथित तौर पर, बिना किसी साफ़ इजाज़त के, इस विवाद से जुड़ा आश्वासन दिया था। इस न्यायालय ने, बार-बार, एक वकील और उसके मुवक्किल के बीच भरोसेमंद रिश्ते पर ध्यान दिया है। हम कुछ फ़ैसले देख सकते हैं जो इस तरह हैं।

9.1 ***कोक्कंडा बी. पूंडाचा बनाम के.डी. गणपति***[8] में यह कहा गया था:

> **"12.** इस चरण पर हम अधिवक्ता और उसके मुवक्किल के बीच के संबंध की प्रकृति की ओर भी ध्यान दिलाना आवश्यक समझते हैं, जो पूर्णतः विश्वास और आस्था पर आधारित होती है। एक अधिवक्ता अपने मुवक्किल द्वारा दी गई गोपनीय जानकारी किसी अन्य व्यक्ति को प्रकट नहीं कर सकता। ऐसा इसलिए है क्योंकि वह अपने मुवक्किल का न्यासी होता है,

जो उस पर विश्वास और भरोसा रखता है।अतः अधिवक्ता का यह कर्तव्य है कि वह अपने मुवक्किल के प्रति सभी दायित्वों का निर्वहन सावधानीपूर्वक तथा सद्भावना के साथ करे। चूंकि मुवक्किल विधिक कार्यवाही के संचालन का संपूर्ण दायित्व अधिवक्ता को सौंपता है, इसलिए अधिवक्ता को 'uberrima fides' अर्थात सर्वोच्च सद्भावना, ईमानदारी, निष्पक्षता और निष्ठा के सिद्धांतों के अनुसार कार्य करना चाहिए।

x x x

14. उपर्युक्त पुनरुत्पादित नियमों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अधिवक्ता पर अधिरोपित सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्यों में से एक यह है कि वह अपने मुवक्किल के हितों की रक्षा निर्भीकतापूर्वक तथा सभी न्यायोचित और सम्मानजनक साधनों द्वारा करे।कोई अधिवक्ता सामान्यतः बिना पर्याप्त कारण तथा बिना मुवक्किल को युक्तिसंगत और पर्याप्त सूचना दिए अपने दायित्व/नियोजन से पृथक नहीं हो सकता। यदि उसे यह विश्वास करने का कारण हो कि वह स्वयं उस मामले में साक्षी बन सकता है, तो अधिवक्ता को उस वाद में वकालतनामा स्वीकार नहीं करना चाहिए और न ही उसमें उपस्थित होना चाहिए।

9.2 इस न्यायालय की एक बेंच ने ***स्टेट ऑफ़ यू.पी. बनाम यू.पी.स्टेट लॉ ऑफिसर्स समूह*** केस में इस व्यवसाय के प्रकृति पर निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया है : ।

"**14.** विधि व्यवसाय मूलतः एक सेवा-उन्मुख पेशा है। आज के अधिवक्ता के पूर्वज केवल एक प्रवक्ता मात्र थे, जो समाज के जरूरतमंद सदस्यों की ओर से प्राधिकारियों के समक्ष उनके पक्ष को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत कर सेवा प्रदान करते थे। यह सेवाएँ प्राप्त या प्राप्त होने वाली पारिश्रमिक की परवाह किए बिना दी जाती थीं।विवादों और वाद-विवाद की वृद्धि के साथ वकालत एक पूर्णकालिक व्यवसाय बन गई और अधिकांश अधिवक्ता इसे अपनी आजीविका का एकमात्र स्रोत मानकर उस पर निर्भर हो गए। अधिवक्ताओं द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं की प्रकृति प्रारंभ में निजी थी, जब तक कि सरकार और सार्वजनिक निकायों ने अपनी ओर से वाद संचालन हेतु उन्हें नियुक्त करना प्रारंभ नहीं किया। सरकार और सार्वजनिक निकाय अधिवक्ताओं की सेवाएँ पूर्णतः संविदात्मक आधार पर लेते थे–चाहे किसी विशिष्ट वाद के लिए या निश्चित अथवा अनिश्चित अवधि के लिए।यद्यपि कुछ मामलों में अनुबंध अधिवक्ताओं को निजी वकालतनामे स्वीकार करने से प्रतिबंधित करता था, तथापि अनुबंध की प्रकृति व्यावसायिक संलग्नता से बदलकर सेवा-नियोजन में परिवर्तित नहीं होती थी। सरकार या सार्वजनिक निकाय का अधिवक्ता उसका कर्मचारी नहीं, बल्कि निर्दिष्ट कार्य के लिए संलग्न एक पेशेवर विधि-व्यवसायी होता था।आज भी स्थिति यही है, यद्यपि सरकार और सार्वजनिक निकायों की पूर्णकालिक सूची में सम्मिलित अधिवक्ताओं को उनके विधि अधिकारी कहा जाता है। यही कारण है कि ऐसे विधि अधिकारियों के मामले में बार कौंसिल ऑफ़ इंडिया के नियम 49 में निहित अपवाद उक्त नियम द्वारा अधिवक्ता को पूर्णकालिक रोजगार स्वीकार करने पर लगाए गए प्रतिबंध को शिथिल करता है।

15. अधिवक्ता और उसके मुवक्किल के बीच का संबंध विश्वास और आस्था का होता है। मुवक्किल व्यक्तिगत कारणों से अधिवक्ता को नियुक्त करता है और उन्हीं कारणों से उसे छोड़ने के लिए भी स्वतंत्र है। वह अपने अधिवक्ता से वकालतनामा वापस लेने के कारण बताने के लिए बाध्य नहीं है।दूसरी ओर, अधिवक्ता अपने मुवक्किल का मात्र अभिकर्ता (agent) नहीं, बल्कि उसका गरिमापूर्ण एवं उत्तरदायी प्रवक्ता होता है। वह न्यायालय के समक्ष प्रत्येक तथ्य प्रस्तुत करने या प्रत्येक विधिक तर्क रखने के लिए बाध्य नहीं है, जिसे उसका मुवक्किल रखना चाहता हो, चाहे वह कितना ही अप्रासंगिक क्यों न हो। मूलतः अधिवक्ता अपने मुवक्किल का विधिक सलाहकार होता है और कुछ न्यायिक क्षेत्रों में उसे उचित रूप से "अधिवक्ता या विधि-परामर्शदाता " कहा जाता है।मामले के तथ्यों से अवगत होने के पश्चात, यह अधिवक्ता के विवेक पर निर्भर करता है कि वह किन तथ्यों और विधिक बिंदुओं को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करेगा। न्यायालय का उत्तरदायी अधिकारी तथा न्याय-प्रशासन का एक महत्वपूर्ण अंग होने के कारण अधिवक्ता का दायित्व न्यायालय तथा प्रतिपक्ष के प्रति भी होता है। उसे निष्पक्षता के साथ कार्य करना चाहिए ताकि न्याय सुनिश्चित हो सके। यदि वह केवल अपने मुवक्किल का मुखपत्र बनकर कार्य करता है, तो वह अपनी गरिमा को कम करता है।अधिवक्ता और निजी मुवक्किल के बीच का यह संबंध सार्वजनिक निकायों के साथ उसके संबंधों पर भी समान रूप से लागू होता है।

9.3 ***हिमालयन कोऑपरेटिव ग्रुप हाउसिंग सोसाइटी बनाम बलवान सिंह*** में तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा की गई टिप्पणियाँ भी वर्तमान संदर्भ में हमारे लिए मार्गदर्शक एवं शिक्षाप्रद हैं।:

"22. उपर्युक्त के अतिरिक्त, हमारे मत में अधिवक्ताओं को सामान्यतः अपने मुवक्किलों के अभिकर्ता के रूप में देखा जाता है। यद्यपि अभिकरण का विधि-सिद्धांत मुवक्किल-अधिवक्ता संबंध पर पूर्णतः कठोर रूप से लागू नहीं होता, तथापि अधिवक्ताओं के पास कुछ अधिकार तथा कुछ दायित्व अवश्य होते हैं। चूंकि अधिवक्ता अपने मुवक्किल के न्यासी भी होते हैं, अतः उनके दायित्व कभी-कभी अन्य अभिकर्ताओं पर अधिरोपित दायित्वों की अपेक्षा अधिक कठोर होते हैं। अभिकरण की स्थिति अधिवक्ता को वकालतनामे/नियोजन के विषय-वस्तु के संबंध में मुवक्किल की ओर से कार्य करने का अधिकार प्रदान करती है। अधिवक्ता-मुवक्किल संबंध का एक मूलभूत सिद्धांत यह है कि अधिवक्ता अपने मुवक्किल के प्रति न्यासगत दायित्वों का निर्वहन करते हैं। इन दायित्वों के अंतर्गत अधिवक्ता उन सभी पारंपरिक कर्तव्यों को ग्रहण करते हैं, जो एक अभिकर्ता अपने प्रधान के प्रति निभाता है, और कम से कम प्रतिनिधित्व के उद्देश्यों के संबंध में निर्णय लेने के मामले में मुवक्किल की स्वायत्तता का सम्मान करना उनका दायित्व है। अतः व्यावसायिक उत्तरदायित्व की सामान्यतः स्वीकृत धारणाओं के अनुसार, अधिवक्ता को अपने विवेक के स्थान पर मुवक्किल के निर्देशों का पालन करना चाहिए। विधि अब सुव्यवस्थित है कि किसी दावे का समझौता (settlement/compromise) करने के लिए अधिवक्ता को विशिष्ट रूप से अधिकृत होना आवश्यक है; मात्र नियोजन

के आधार पर उसे अपने मुवक्किल को किसी समझौते से बाध्य करने का न तो निहित और न ही प्रत्यक्ष अधिकार प्राप्त होता है।दूसरे शब्दों में, अधिवक्ता को नियोजन के आधार पर मुवक्किल के विधिक उद्देश्य की प्राप्ति के साधनों का चयन करने का अधिकार होता है, जबकि उस उद्देश्य का निर्धारण करने का अधिकार मुवक्किल के पास होता है। यदि संबंधित निर्णय स्पष्ट रूप से उन निर्णयों में आता है जो मुवक्किल के अधिकार क्षेत्र में हैं, तो अधिवक्ता द्वारा मुवक्किल से परामर्श किए बिना निर्णय लेना या उसकी ओर से स्वयं निर्णय करना, प्रभावी विधिक सहायता में कमी के समान माना जा सकता है।

x x x

30. प्रिवी काउंसिल ने सौरेंद्र नाथ मित्रा बनाम तरुबाला दासी [(1929-30) 57 IA 133 : (1930) 31 LW 803 : AIR 1930 PC 158] में ये दो बातें कही हैं जो इस चर्चा के लिए ज़रूरी हैं: (IA पेज 140-41)

> "दो टिप्पणियाँ और जोड़ी जा सकती हैं। प्रथम, अधिवक्ता की निहित प्राधिकरण उसकी पदस्थिति का कोई परिशिष्ट नहीं है और न ही यह न्यायालयों द्वारा बैरिस्टर या अधिवक्ता के दर्जे के साथ जोड़ी गई कोई गरिमा है। यह प्राधिकरण मुवक्किल के हित में निहित होती है, ताकि अधिवक्ता की नियुक्ति का अधिकतम लाभकारी प्रभाव सुनिश्चित किया जा सके।द्वितीय, निहित प्राधिकरण को मुवक्किल के स्पष्ट निर्देशों द्वारा सदैव निरस्त किया जा सकता है। कोई भी अधिवक्ता अपने मुवक्किल के स्पष्ट निर्देशों के विरुद्ध किसी वाद का समझौता करने का वास्तविक अधिकार नहीं रखता। यदि उसे

ऐसे स्पष्ट निर्देश अपने मुवक्किल के हितों के प्रतिकूल प्रतीत हों, तो उसका उपाय यह है कि वह वकालतनामा/ब्रिफ़ वापस कर दे।"

(देखें: जमीलाबाई अब्दुल कादर बनाम शंकरलाल गुलाबचंद [(1975) 2 SCC 609] और स्वेन्स्का हैंडेल्सबैंकन बनाम इंडियन चार्ज क्रोम लिमिटेड. [(1994) 2 SCC 155])

31. अतः यह अधिवक्ता का गंभीर एवं पवित्र कर्तव्य है कि वह अपने मुवक्किल द्वारा प्रदत्त अधिकार-सीमा का अतिक्रमण न करे। किसी भी ऐसी रियायत (concession) देने से पूर्व, जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मुवक्किल के विधिसम्मत अधिकारों को प्रभावित कर सकती हो, मुवक्किल या उसके विधिवत अधिकृत अभिकर्ता से उपयुक्त निर्देश प्राप्त करना सदैव उचित है।अधिवक्ता न्यायालय के समक्ष मुवक्किल का प्रतिनिधित्व करता है तथा उसकी ओर से कार्यवाही संचालित करता है। वह न्यायालय और मुवक्किल के बीच एकमात्र कड़ी होता है। अतः उसकी जिम्मेदारी अत्यंत महत्वपूर्ण एवं भारसाध्य (onerous) होती है। उससे अपेक्षा की जाती है कि वह अपने विवेक के स्थान पर मुवक्किल के निर्देशों का पालन करे।

32. सामान्यतः, अधिवक्ता द्वारा किए गए तथ्यों के स्पष्ट और निर्विवाद अभ्यर्पण/स्वीकारोक्ति उसके प्रधान अर्थात मुवक्किल पर बाध्यकारी होते हैं। किंतु जहाँ किसी कथित स्वीकारोक्ति के संबंध में संदेह हो, वहाँ न्यायालय को ऐसे अभ्यर्पण को स्वीकार करने में सावधानी बरतनी चाहिए, जब तक कि यह स्पष्ट न हो जाए कि अधिवक्ता अपने मुवक्किल द्वारा ऐसा करने के लिए अधिकृत था।

इसके अतिरिक्त, मुवक्किल किसी ऐसे कथन या स्वीकारोक्ति से बाध्य नहीं होता, जिसे वह स्वयं या उसका अधिवक्ता करने के लिए अधिकृत न हो। सामान्यतः अधिवक्ता को ऐसा कोई निहित या प्रत्यक्ष अधिकार प्राप्त नहीं होता कि वह ऐसा अभ्यर्पण या कथन करे, जिससे मुवक्किल के महत्वपूर्ण विधिक अधिकारों का प्रत्यक्ष रूप से परित्याग या अंतिम निपटारा हो जाए, जब तक कि ऐसा अभ्यर्पण उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्पष्ट रूप से आवश्यक एवं उपयुक्त कदम न हो, जिसके लिए अधिवक्ता को नियुक्त किया गया है।

हम यह स्पष्ट करना आवश्यक समझते हैं कि न तो मुवक्किल और न ही न्यायालय, विधि संबंधी प्रश्नों या विधिक निष्कर्षों के संबंध में अधिवक्ता द्वारा दिए गए कथनों या स्वीकारोक्तियों से बाध्य होते हैं। अतः व्यावसायिक उत्तरदायित्व की सामान्यतः स्वीकृत अवधारणाओं के अनुसार, अधिवक्ताओं को अपने विवेक के स्थान पर मुवक्किल के निर्देशों का पालन करना चाहिए।हम यह भी जोड़ सकते हैं कि कुछ मामलों में अधिवक्ता बिना मुवक्किल से परामर्श किए निर्णय ले सकता है, जबकि अन्य मामलों में निर्णय लेने का अधिकार मुवक्किल के लिए सुरक्षित रहता है। प्रायः यह कहा जाता है कि कार्यनीति से संबंधित निर्णय अधिवक्ता मुवक्किल से परामर्श किए बिना ले सकता है, किंतु ऐसे निर्णय जो मुवक्किल के अधिकारों को प्रभावित कर सकते हैं, उन्हें लेने का अधिकार मुवक्किल को ही होता है।“

(विशेषरूप से रेखांकित)

9.4 हाल ही में, इस न्यायालय की एक समकक्ष पीठ ने **बार ऑफ इंडियन लॉयर्स बनाम नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ कम्युनिकेबल डिज़ीज़ेस** में, जिसमें हममें से एक (न्यायमूर्ति मिथल) भी सम्मिलित थे और जिसके लिए न्यायमूर्ति त्रिवेदी ने निर्णय लिखा, निम्नलिखित अवलोकन किए:

"51. जब हम अधिवक्ता और उसके मुवक्किल के संबंध को इस दृष्टिकोण से देखते हैं, तो निम्नलिखित विशिष्ट विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं :

51.1. अधिवक्ताओं को सामान्यतः अपने मुवक्किलों के अभिकर्ता के रूप में देखा जाता है और वे अपने मुवक्किलों के प्रति न्यासगत दायित्व रखते हैं।

51.2. अधिवक्ताओं पर वे सभी पारंपरिक कर्तव्य अधिरोपित होते हैं, जो एक अभिकर्ता अपने प्रधान के प्रति निभाता है। उदाहरणार्थ, अधिवक्ता को कम से कम प्रतिनिधित्व के उद्देश्यों के संबंध में निर्णय लेने में मुवक्किल की स्वायत्तता का सम्मान करना होता है।

51.3. अधिवक्ता मुवक्किल के स्पष्ट निर्देशों के बिना न्यायालय के समक्ष कोई रियायत देने या कोई आश्वासन देने के अधिकारी नहीं हैं।

51.4. यह अधिवक्ता का गंभीर एवं पवित्र कर्तव्य है कि वह अपने मुवक्किल द्वारा प्रदत्त अधिकार-सीमा का अतिक्रमण न करे।

51.5. अधिवक्ता किसी भी ऐसी कार्रवाई करने या कथन/रियायत देने से पूर्व, जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मुवक्किल के विधिक अधिकारों को

<u>प्रभावित कर सकती हो, मुवक्किल या उसके विधिवत अधिकृत अभिकर्ता से उपयुक्त निर्देश प्राप्त करने के लिए बाध्य है।</u>

51.6. अधिवक्ता न्यायालय के समक्ष मुवक्किल का प्रतिनिधित्व करता है तथा उसकी ओर से कार्यवाही संचालित करता है। वह न्यायालय और मुवक्किल के बीच एकमात्र कड़ी होता है। अतः उसकी जिम्मेदारी अत्यंत महत्वपूर्ण एवं भारसाध्य होती है। उससे अपेक्षा की जाती है कि वह अपने विवेक के स्थान पर मुवक्किल के निर्देशों का पालन करे।"

(विशेषरूप से रेखांकित)

10. उपर्युक्त निर्णयों से यह स्पष्ट होता है कि अधिवक्ता और मुवक्किल का संबंध न्यासगत प्रकृति का होता है तथा अधिवक्ता, मुवक्किल का अभिकर्ता माना जाता है। यह भी स्पष्ट है कि अधिवक्ता को मुवक्किल के निर्णय लेने के अधिकार का सम्मान करना चाहिए।इससे यह निष्कर्ष स्वाभाविक रूप से निकलता है कि न्यायालय के समक्ष दिया गया कोई भी आश्वासन मुवक्किल की आवश्यक एवं विधिवत प्राधिकृति के बिना नहीं दिया जा सकता।

11. वर्तमान मामले में अपीलकर्ता हमें यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि वाद-विवादित संपत्ति का हस्तांतरण न करने का जो आश्वासन दिया गया था– जिसके निस्संदेह दूरगामी परिणाम हैं और जो दीर्घ अवधि तक प्रभावी रहता है–वह आवश्यक प्राधिकरण के बिना दिया गया था। हमें ऐसी स्थिति स्वीकार करना कठिन प्रतीत होता है।

12. विवादित आश्वासन जुलाई 2007 में दिया गया था और विविध आवेदन वर्ष 2011 में, अर्थात लगभग साढ़े चार वर्ष पश्चात दायर किया गया। यदि वास्तव में उक्त आश्वासन आवश्यक प्राधिकरण के बिना दिया गया होता, तो मुवक्किल उस आदेश से मुक्त किए जाने के लिए आवेदन करने के पूर्णतः अधिकारी थे; तथापि ऐसा कोई कदम नहीं उठाया गया।उसी अंडरटेकिंग पर एक महीने बाद, 13 अगस्त 2007 को फिर से ज़ोर दिया गया और बाद में इसे न्यायालय का एक आदेश बनाया गया, जिसे, जैसा कि ऊपर बताया गया है, समय-समय पर बढ़ाया गया। न्यायालय के साफ़ आदेश के बावजूद प्रकरण की विषय-वस्तु संपत्ति को अलग करना, हमारे हिसाब से, अपील करने वालों को न्यायालय की अवमानना के लिए सज़ा देने में उच्च न्यायालय के उठाए गए कदम को पूरी तरह से सही ठहराता है।

13. न्यायालय की अवमानना की शक्तियाँ इस उद्देश्य से प्रदान की गई हैं कि विधि की गरिमा और महिमा सदैव अक्षुण्ण बनी रहे। इस उद्देश्य को संविधान पीठ ने ***सर्वोच्च न्यायालय बार एसोसिएशन बनाम यूनियन ऑफ़ इंडिया*** में निम्नलिखित शब्दों में उपयुक्त रूप से व्यक्त किया है :

> "42. न्यायालय की अवमानना एक खास अधिकार क्षेत्र है जिसका इस्तेमाल बहुत कम और सावधानी से किया जाना चाहिए, जब भी कोई काम न्याय के प्रशासन पर बुरा असर डालता है या उसके रास्ते में रुकावट डालता है या न्यायिक संस्थाओं में जनता का भरोसा हिलाता है। इस अधिकार क्षेत्र का इस्तेमाल तब भी किया जा सकता है जब शिकायत किया गया काम कानून की शान या न्यायालय की गरिमा पर बुरा असर डालता है। अवमानना अधिकार क्षेत्र का मकसद न्यायालय

की शान और गरिमा को बनाए रखना है। यह एक अजीब तरह का अधिकार क्षेत्र है जिसमें "जूरी, जज और जल्लाद" शामिल हैं और ऐसा इसलिए है क्योंकि न्यायालय मुकदमा करने वाली पार्टियों के बीच किसी भी दावे पर फैसला नहीं कर रहा है। इस अधिकार क्षेत्र का इस्तेमाल किसी एक जज की गरिमा की रक्षा के लिए नहीं बल्कि न्याय के प्रशासन को बदनाम होने से बचाने के लिए किया जाता है। समुदाय के आम हित में यह ज़रूरी है कि न्यायालय के अधिकार को कम न आंका जाए। खतरे में पड़ना चाहिए और न्याय के प्रशासन में कोई गलत दखल नहीं होना चाहिए। यह न्यायालय और अवमानना करने वाले के बीच का मामला है और तीसरे पक्ष इसमें दखल नहीं दे सकते। यह न्याय के प्रशासन, कानून की गरिमा और अदालतों की गरिमा की मदद के लिए संक्षेप में किया जाता है। ऐसे किसी भी काम की इजाज़त नहीं दी जा सकती जिससे न्याय के प्रशासन की निष्पक्षता और निष्पक्षता में जनता का भरोसा डगमगाए।

जब न्यायालय के आदेश का साफ़ उल्लंघन हुआ हो, जैसा कि इस मामले में है, तो अवमानना के अधिकार क्षेत्र के इस्तेमाल में कोई गलती नहीं की जा सकती। इसलिए, उच्च न्यायालय का फ़ैसला सही ठहराया जाता है।

14. मौजूदा तथ्यों और हालात को देखते हुए, यह ध्यान में रखते हुए कि यह अपील फाइल करते समय, अपील करने वाला नंबर 1, जो उच्च न्यायालय के सामने अवमानना करने वाला नंबर 3 था, 63 साल का था और आज उसकी उम्र लगभग 68 साल होनी चाहिए, हम उस आदेश में बदलाव करते हैं कि सिविल जेल में तीन महीने की कैद हटा दी जाएगी। संपत्ति की कुर्की

से जुड़ा बाकी आदेश बिना किसी बदलाव के रहेगा। इसके अलावा, अपील करने वालों को मिलने वाला मुआवजा 10 लाख रुपये से बढ़ाकर 13 लाख रुपये कर दिया जाएगा।

15. अपील को आंशिक रूप से स्वीकार किया जाता है और ऊपर दिए गए आदेश में बदलाव के साथ निपटाया जाता है। मुआवज़े की रकम पर निचली अदालत के फैसले की तारीख, यानी 2 अगस्त 2013 से 6% की दर से साधारण ब्याज़ भी लगेगा।

यदि कोई लंबित आवेदन हो, तो वह भी निस्तारित (निपटाया) माना जाएगा।

केस का परिणाम: अपील आंशिक रूप से स्वीकार की गई।

शीर्ष टिप्पणियाँ दिव्या पांडेय द्वारा तैयार की गई।

यह अनुवाद पैनल अनुवादक

मधु कुमारी के द्वारा *किया गया है*।